RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2024

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम् ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

प्राचीन भारत में राजा और उसके कर्त्तव्य

पिंकी सांखला

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

राजा और प्रजा के संबंध की वैदिक व्याख्या में शासन को शक्ति का नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व और धर्म का केंद्र माना गया है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में वरुण का 'धृतव्रत:'' के रूप में चित्रण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि राजा का पद निरंकुश नहीं होता; उसका संचालन उन नियमों, प्रतिज्ञाओं और विधियों के अधीन चलता है, जिन्हें वेदों ने धर्म का रूप दिया है। व्रत का अर्थ केवल व्यक्तिगत संयम नहीं, बल्कि शासन-व्यवस्था में नैतिक अनुशासन का पालन है; अत: राजा स्वयं व्यवस्था का सेवक है, स्वामी नहीं।

राजा के राष्ट्रीय कर्त्तव्य

अथर्ववेद में यह उद्घोषित है कि राजा प्रजा को रंजित करता है—प्रजा के सुख-दुख में सम्मिलित होकर उसके हित के अनुरूप कार्य करता है। इसी से 'राजा प्रकृति रंजनात्'' की संकल्पना सामने आती है, जो शासन का मानवीय आधार है। शासन का उद्देश्य प्रजा पर अधिकार जमाना नहीं, बल्कि उसके जीवन का पोषण, संवर्धन और संरक्षण है। यही कारण है कि क्षत्र शब्द की व्युत्पत्ति, 'क्षतात् त्रायते' जो क्षति से रक्षा करे, राजा को संरक्षक और रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

राजाभिषेक के अवसर पर यजुर्वेद द्वारा दिए गए वचन राजा के लिए किसी राजकीय अनुबंध की तरह हैं। 'कृष्यै त्वा' यह स्पष्ट करता है कि राजा का प्रथम कर्तव्य अन्न-सुरक्षा हो। कृषि के विकास, व्यवस्था और संरक्षण के बिना समाज की खुशी संभव नहीं। 'क्षेमाय त्वा' जन-कल्याण, शांति और सुरक्षा का घोषणापत्र है। यहाँ शासन का स्वरूप केवल सैन्य-संगठन न होकर सामाजिक कल्याण है। 'रय्यै त्वा'' से राष्ट्र के आर्थिक और सांस्कृतिक उत्थान का बोध होता है। राजधर्म केवल स्थिरता देना नहीं, सृजनशील ऊर्जा के स्रोत खोलना है। 'पोषाय त्वा'' से देश की समग्र उन्नति का बोध है—एक वर्ग, जाति अथवा सीमा के पार जाकर पूरे राष्ट्र को पोषित करना।

ऐतरेय ब्राह्मण की उद्घोषणा राजा की प्रशासनिक व्यवस्था का नैतिक ढाँचा प्रस्तुत करती है। कर-संग्रह का अधिकार राजनैतिक स्वार्थ का नहीं, राष्ट्ररक्षा और समाजोपकार का साधन है। शत्रुनाश का दायित्व केवल बाहरी आक्रमणकारियों के विरुद्ध नहीं, बल्कि अराजकता, अत्याचार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध भी है। वेदज्ञों और विद्वानों की रक्षा का तात्पर्य है कि राजा ज्ञान का पोषक हो, वह शिक्षा, संस्कृति और वैज्ञानिक चेतना की सुरक्षा करे। धर्म की रक्षा का अर्थ है कि शासन सत्य, न्याय और शांति की भूमि पर खड़ा हो—भय, अत्याचार या अन्याय के बल पर नहीं।

यजुर्वेद में वर्णित 'बहुकार, श्रेयस्कर, भूयस्कर'' शासन की दार्शनिक परिपक्वता को उद्घाटित

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

करते हैं। राजा को राष्ट्रहित में अनेक कार्य करने हैं—यह सतत् रचनात्मकता का उद्घोष है। यह अपेक्षा कि उसके कार्य श्रेयस्कर हों, मात्र सफल नहीं, हितकारी हों, बताती है कि शासन का मूल्यांकन प्रजा के कल्याण से होता है। भूयस्कर का भाव यह है कि जो कार्य कल्याणकारी सिद्ध हों, उन्हें निरंतरता दी जाए; शासन क्षणिक प्रदर्शन का मंच नहीं, देश की दीर्घकालीन उन्नति का पथ है।

राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की सुरक्षा और राज्य की शांति सुनिश्चित करना है। यजुर्वेद और ऋग्वेद के अनुसार राजा को इतना प्रतापी होना चाहिए कि पापी, राक्षस या दुष्ट किसी प्रकार का आतंक न फैला सकें। प्रजा का जीवन सुरक्षित और निर्भय होना शासन का आधार है। यदि राजा प्रजा की रक्षा में असफल रहता है, तो उसका शासन अस्थिर और अवैध माना जाता है।

राजा का दूसरा कर्तव्य शत्रुनाशन है। शांति और व्यवस्था तभी स्थिर रहती है जब राज्य में बाहरी और आंतरिक शत्रु नष्ट हों। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि राजा 'अमित्राणां हन्ता' — शत्रुओं का संहारक है। राजा को उपद्रवी, कपटी और अन्याय करने वालों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए और उन्हें उचित दंड देना चाहिए।

राजा का तीसरा कर्तव्य प्रजा का पालन-पोषण और संवर्धन है। महाभारत के अनुसार राजा प्रजा के लिए माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, यम और कुबेर के रूप में कार्य करता है। वह प्रजा को दंड, शिक्षा, सुरक्षा, उदारता और सहयोग प्रदान करता है और उसे प्रसन्न रखता है। प्रजा का हित राजा के लिए सर्वोपरि है।

स्वराज्य और राष्ट्ररक्षा राजा का चौथा कर्तव्य हैं। प्रत्येक राजा और उसका देश स्वतंत्र होना चाहिए। ऋग्वेद और यजुर्वेद में स्वराज्य की महत्ता प्रतिपादित की गई है। राजा को राष्ट्र की रक्षा करते हुए उसे सुदृढ़ और समृद्ध बनाना चाहिए, ताकि उसकी शक्ति और राज्य की श्रीवृद्धि सुनिश्चित हो।

अंत में कठोर अनुशासन और न्याय का पालन राजा का अनिवार्य कर्तव्य है। अनुशासनहीन शासन अव्यवस्था को जन्म देता है। यजुर्वेद में कहा गया है कि उग्रवादी और दुष्टों को कठोर दंड दें, मित्रों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करें और शासन में संतुलित नीति अपनाएँ। यही राजा की शक्ति और शासन की स्थिरता का आधार है।

राजा के धार्मिक कर्तव्य

राजा का धर्म केवल शासन तक सीमित नहीं रहता, उसका मूल आधार ईश्वरभक्ति और धार्मिक आस्थाओं पर टिका होता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि राजा इन्द्र, अर्थात् परमात्मा का प्रिय होना चाहिए। एक धर्मप्रिय और ईश्वरभक्त राजा ही अपनी प्रजा को सत्कर्मों, नैतिकता और धर्म के पालन की ओर प्रेरित कर सकता है। यजुर्वेद में यह कहा गया है कि धर्म ही राजा की आधारशिला है। इसका अर्थ यह है कि राजा का प्रत्येक निर्णय, प्रत्येक कार्य और प्रत्येक नीति धर्म के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। धार्मिक कर्तव्यों का अर्थ केवल यज्ञ, पूजा या कर्मकांड तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें दान, दया, परोपकार, सत्यनिष्ठा, सहानुभूति और सहिष्णुता जैसे गुण भी सम्मिलित हैं। इसी संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण में राजा को 'धर्मस्य गोप्ता', अर्थात् धर्म का रक्षक कहा गया है।

सत्यनिष्ठा राजा के धार्मिक कर्तव्यों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। ऋग्वेद में राजा का कर्तव्य

बताया गया है कि वह सत्य से असत्य को पृथक करे और केवल सत्य को अपनाए। यजुर्वेद में भी राजा को सत्य और ईमानदारी की शिक्षा दी गई है। उसे 'सत्यौजस', अर्थात् सत्य का तेज और प्रताप रखने वाला कहा गया है, तथा न्यायाधीश के रूप में वरुण देवता के समान माना गया है। साथ ही उसे सत्य का प्रेरक और प्रतिष्ठापक मानते हुए सूर्य देव से भी सम्मानित किया गया है। इस प्रकार राजा का प्रत्येक निर्णय और शासन-व्यवस्था सत्य और न्याय के आधार पर होनी चाहिए।

धार्मिक कर्तव्यों में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा भी शामिल है। वैदिक साहित्य में राजा को यह शिक्षा दी गई है कि वह पृथ्वी माता को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचाए और स्वयं भी उसकी रक्षा करें। इसका अर्थ है कि राजा को वृक्षों, वनस्पतियों और जल-संसाधनों की रक्षा करनी चाहिए, उनके कटाव को रोकना चाहिए और समय-समय पर वृक्षारोपण जैसी गतिविधियों का संचालन करना चाहिए। इससे न केवल पर्यावरण संतुलित रहता है, बल्कि वर्षा समय पर होती है और देश में दुर्भिक्ष तथा प्राकृतिक संकटों से बचाव होता है।

राजा के आर्थिक कर्तव्य

राजा का आर्थिक कर्तव्य राज्य के समग्र विकास और प्रजा के कल्याण से जुड़ा है। वैदिक साहित्य में राजा के आर्थिक कर्तव्यों में कृषि-विकास, प्रजा की आर्थिक स्थिति में सुधार, कोषवृद्धि और धन का यथायोग्य वितरण तथा कर-संग्रह प्रमुख रूप से उल्लेखित हैं।

सबसे पहले, कृषि-विकास राजा का अत्यंत महत्वपूर्ण कर्तव्य है। राज्याभिषेक के अवसर पर स्पष्ट किया जाता है कि राजा को कृषि का विकास करना चाहिए। राष्ट्रीय उन्नति और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए कृषि ही मूल आधार है। कृषि से ही धन, धान्य और संपदा की उपलब्धि होती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए किसानों के उत्थान और कृषि के संवर्धन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। अथर्ववेद में भी उल्लेख है कि ऐश्वर्यशाली राजा कृषि को विकसित करने का प्रयास करे और कृषकों को सुविधा प्रदान करे। कृषि का विकास केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र की स्थिरता और प्रजा की खुशहाली के लिए भी अनिवार्य है।

इसके साथ ही राजा का कर्तव्य प्रजा की आर्थिक स्थिति को सुधारना है। यजुर्वेद में कहा गया है कि राजा को धर्मपूर्वक और प्रजा को पीड़ित न करते हुए सभी वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—की स्थिति सुधारनी चाहिए। प्रजा के ऐश्वर्य और संपन्नता का ध्यान रखना राजा की नैतिक और आर्थिक जिम्मेदारी है। 'अमेनि' का अर्थ है कि आर्थिक सुधार के उपाय ऐसे हों, जिससे प्रजा का उत्पीड़न न हो और समग्र कल्याण सुनिश्चित हो।

राजा के कर्तव्यों में कोष की वृद्धि और धन का न्यायपूर्ण वितरण भी शामिल है। ऋग्वेद में कहा गया है कि राजा को धन-संग्रह करना चाहिए और अपने कोष को बढ़ाना चाहिए। इसके साथ ही उसे यथायोग्य धन का वितरण भी करना चाहिए। अथर्ववेद में प्रतापी राजा को अपनी तेजस्विता और शक्ति से कर-संग्रह करके कोष की वृद्धि करने और दान देने का आदेश दिया गया है। धन का यथायोग्य उपयोग राष्ट्रीय विकास, सामाजिक कल्याण और योजनाओं के क्रियान्वयन में किया जाना चाहिए। कुंताप सूक्त में वर्णित है कि राजा परिक्षित् ने शासन-व्यवस्था में जनकल्याण के कई कार्य किए और उसके राज्य में प्रजा

संपन्न और प्रसन्न थी।

कर-संग्रह राजा का एक अनिवार्य कर्तव्य है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि राजा अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार प्रजा से कर वसूल करता है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी अभिषेक के समय कहा गया है कि 'विशाम् अत्ता अजनि' — अभिषेक के पश्चात् राजा को प्रजा से कर लेने का अधिकार प्राप्त होता है। कर-संग्रह राजकोष की वृद्धि का प्रमुख साधन है, और कोष में धन होने पर ही राज्य की सभी योजनाएँ सफलतापूर्वक संचालित हो सकती हैं।

राजा के सामाजिक कर्तव्य

राजा के सामाजिक कर्तव्य राज्य के समग्र कल्याण और प्रजा की खुशहाली से जुड़े हैं। यजुर्वेद के अनुसार राजा का अभिषेक प्रजा के कल्याण और उनके विकास के लिए किया जाता है। इसमें 'क्षेम' और 'पोष' का भाव स्पष्ट है, जो प्रजा की कुशलता और भौतिक सुख-साधनों में वृद्धि का निर्देश देता है। राजा का कर्तव्य केवल अपने राष्ट्र की चिंता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसे 'विश्वभृत्' के सिद्धांत के अनुसार विश्वहित, सार्वभौम एकता और समन्वय की ओर भी ध्यान देना चाहिए। वैदिक आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यही दर्शाता है कि यदि विश्व में शांति नहीं होगी तो राष्ट्र की स्थिरता भी संभव नहीं है।

सामाजिक दृष्टि से राजा का कार्य दीन-दु:खियों और समाज के निम्न वर्ग के कष्टों का निवारण करना है। अभिषेक के समय कहा गया है कि राजा का कर्तव्य है कि वह विपत्ति में पड़े लोगों के कष्ट दूर करे और प्रजा में स्वावलम्बन पैदा करे, ताकि वे अपने पैरों पर खड़े होकर अपने कार्यों को संपन्न कर सकें और किसी पर पूर्णत: आश्रित न रहें।

राजा को व्यापार और शिक्षा के संरक्षण का भी ध्यान रखना आवश्यक है। ऋग्वेद में इसका संकेत 'मघवन्' और 'सूरि' शब्दों से मिलता है। मघवन् अर्थात् धनवान और व्यापारी वर्ग; यदि व्यापार और व्यापारी संरक्षित नहीं होंगे तो देश का आर्थिक विकास असंभव है। सूरि अर्थात् विद्वान; विद्वानों और शिक्षा संस्थाओं की सुरक्षा न होने पर शिक्षा का प्रसार और ज्ञान का संरक्षण नहीं हो सकता।

अर्थ और संपन्नता के दृष्टिकोण से राजा का कर्तव्य प्रजा और संबंधियों के लिए धन-धान्य और भौतिक संसाधनों की वृद्धि करना है। अथर्ववेद के अनुसार वही राजा आदरणीय है जो अपनी प्रजा को उन्नति की ओर अग्रसर करे। अन्न और अन्नादि शब्द केवल अन्न तक सीमित नहीं हैं, बल्कि समग्र भौतिक साधनों और जीवन-शैली की उन्नति का द्योतक हैं।

राजा को मित्रों और मित्रराष्ट्रों की वृद्धि भी सुनिश्चित करनी चाहिए। जितने अधिक मित्र होंगे, उतना अधिक जन-सहयोग प्राप्त होगा। मित्रों का कल्याण करना, उन पर विश्वास रखना और अन्य राज्यों के साथ मित्रता स्थापित करना राष्ट्र की स्थिरता और विकास के लिए आवश्यक है। वैदिक साहित्य में मित्र और मित्रराष्ट्रों की वृद्धि 'मित्रवर्धन' शब्द से व्यक्त की गई है।

स्त्री-शील और नारी-संरक्षण राजा का परम सामाजिक कर्तव्य है। अथर्ववेद में ब्रह्मजाया सूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि जिस राष्ट्र में विदुषी, सुशिक्षित और कुलीन स्त्रियों का अपहरण, अत्याचार या अनुचित प्रतिबन्ध होता है, वह राष्ट्र सुरक्षित नहीं रह सकता। राष्ट्र की श्रीवृद्धि और स्थिरता उस देश में रहती है जहाँ स्त्रियों का पूर्ण संरक्षण हो, उनके शील की रक्षा हो और किसी प्रकार का अत्याचार न हो। राजा का

कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र में स्त्रियों के सम्मान और सुरक्षा के लिए निरंतर कार्य करे।

राजा के शैक्षिक कर्तव्य

वेदों में राजा के शैक्षिक कर्तव्यों का उल्लेख स्पष्ट है, और यह राजा के शासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यजुर्वेद में राजा स्वयं कहता है कि वह ज्ञान और विज्ञान को अपनी नाभि अर्थात् केन्द्र मानता है। जैसे शरीर की नाभि केंद्र है, उसी प्रकार ज्ञान और विज्ञान राष्ट्र की उन्नति और प्रजा की प्रगति के लिए आधार हैं। ज्ञान और विज्ञान के प्रसार से ही प्रजा शिक्षित, विवेकशील और सामाजिक रूप से जिम्मेदार बन सकती है।

अभिषेक के समय राजा को निर्देशित किया जाता है कि वह ज्ञान का प्रसार करे। यजुर्वेद में कई मंत्रों में कहा गया है कि 'सरस्वत्यै त्वा अभिषिञ्चामि', अर्थात् ज्ञान के प्रसार के उद्देश्य से राजा को अभिषेक किया जा रहा है। इस प्रकार राष्ट्र की उन्नति और प्रजा की प्रगतिशीलता शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर निर्भर है।

राजा का कर्तव्य अशिक्षा को दूर करना और अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करना भी है। ऋग्वेद में कहा गया है कि अज्ञानियों को ज्ञान दो और अशक्तों को सशक्त बनाओ। भूखों और निर्धन वर्ग को अन्नादि की सुविधा प्रदान करना भी राजा के शैक्षिक और सामाजिक कर्तव्यों का हिस्सा है।

विद्वानों और शिक्षकों का संरक्षण राजा का अनिवार्य कर्तव्य है। ऋग्वेद में कहा गया है कि राजा विद्वानों को सम्मान और संरक्षण दे, उनका सत्कार करे और उन्हें प्रोत्साहित करे। ऐसा करने से शिक्षा का प्रसार होगा और प्रजा में कर्तव्य-बोध और ज्ञान का संवर्धन होगा।

इसके अतिरिक्त, राजा का कर्तव्य है कि वह विश्व को ज्ञान की ज्योति प्रदान करे। यजुर्वेद में उल्लेख है कि ज्ञान ही वह प्रकाश है, जो प्रजा को अपने कर्तव्य की दीक्षा दे सकता है और अज्ञानता के अंधकार से निकालकर सत्कर्म और विवेक की ओर ले जा सकता है।

गायत्री मंत्र का महत्त्व भी राजा के शैक्षिक कर्तव्यों से जुड़ा है। इसे गुरुमंत्र और वेदमाता कहा जाता है क्योंकि इसमें बुद्धि की प्रार्थना की गई है। शुद्ध बुद्धि और विवेक ही राष्ट्र और समाज की प्रगति सुनिश्चित करती है। बुद्धि के माध्यम से ही राजा और प्रजा दोनों अपने कर्तव्यों को समझकर समाज और राज्य के वैभव में योगदान दे सकते हैं।

राजा और प्रजा: राजा के कर्तव्य प्रजा के प्रति

वेदों में राजा और प्रजा का संबंध अंग-अंगी के समान बताया गया है। जैसे शरीर के अंग स्वस्थ हों तो शरीर भी स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार यदि प्रजा स्वस्थ, प्रसन्न और सबल है तो राजा भी शक्तिशाली होता है। यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रजा राजा के अंग हैं और राजा शरीर, जबकि ऋग्वेद में इसे धुरी और अवयव के रूप में व्यक्त किया गया है।

राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा और अभयदान है। उसे प्रजा को सुरक्षित और निर्भय बनाना है, उपद्रवियों से संरक्षण देना है और किसी अंग को क्षति न पहुँचने देना है। प्रजा की भौतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए राजा को प्रयासशील रहना चाहिए। उसे प्रजा में शक्ति, स्फूर्ति और स्वावलम्बन उत्पन्न करना चाहिए तथा उन्हें नए उद्योगों और कार्यों के लिए प्रेरित करना चाहिए।

अर्थ और संसाधनों की दृष्टि से राजा यह सुनिश्चित करे कि राज्य में कोई भूखा या प्यासा न रहे। अन्न और जल की पर्याप्त व्यवस्था के साथ-साथ दुर्भिक्ष या संकट के समय अन्न-संग्रह की भी व्यवस्था करनी चाहिए। प्रजा की खुशहाली, उसकी सुरक्षा और विकास राजा के शासन की सफलता और उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा का आधार है। यदि राजा अपनी प्रजा का कल्याण करता है तो वह इतिहास में अमर होता है और राष्ट्र का वैभव सुनिश्चित करता है।

प्रजा के कर्तव्य राजा के प्रति

वेदों में राजा के कर्तव्यों के साथ प्रजा के कर्तव्यों का भी उल्लेख है। यदि राजा प्रजा के कल्याण के लिए कठिनाइयाँ उठाता है और अपने सुख का त्याग करता है, तो प्रजा का कर्तव्य है कि वह उसके प्रयासों का सम्मान करे और सहयोग करे। यजुर्वेद में कहा गया है कि जब राजा प्रजा को विकास और कल्याण के लिए प्रेरित करता है, तो प्रजा को उसे सहयोग और उत्साह से समर्थन देना चाहिए।

प्रजा को राजा का हमेशा आदर और सम्मान करना चाहिए। ऋग्वेद में उत्तम प्रजा वह है जो राजा के आदेशों का पालन करे और उसकी योजनाओं में सहयोग करे। अथर्ववेद के अनुसार जो प्रजा अनुशासन का पालन करती है, उसमें धार्मिकता और प्रगति की भावना होती है। राजा और प्रजा का संबंध केवल शासक और शासित का नहीं, बल्कि हार्दिक एकता और सहयोग का भी होना चाहिए। अत: प्रजा राजा को आयोजनों में बुलाए और राजा भी प्रजा की उपेक्षा न करे।

राजा और प्रजा के संबंध

वेदों में राजा और प्रजा के संबंध को माता और पुत्र के समान समझाया गया है। यजुर्वेद में अभिषेक के समय मंत्रों में राजा को आदर्श माता यानी 'मातृतमा' कहा गया है। जैसे माता अपने पुत्र की रक्षा करती है, उसे पालती और विकसित करती है, उसी प्रकार राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा का संरक्षण करे, उसके हित की चिन्ता करे और उसे उन्नत करे। मंत्रों में प्रजा को कर्मठ और अथक परिश्रमी बताया गया है ताकि जो भी कार्य दिया जाए, वह उसे पूरी सामर्थ्य से संपन्न करे।

महाभारत शान्तिपर्व में इसे गर्भिणी स्त्री के समान बताया गया है, जो अपने सुख और इच्छाओं को त्यागकर केवल गर्भस्थ बालक के हित का ध्यान रखती है। इसी प्रकार राजा को प्रजा के कल्याण के लिए अपने निजी सुख का परित्याग करना चाहिए। राजा के व्यवहार में स्नेह, माधुर्य और समवेदना होनी चाहिए, जिससे वह लोक-प्रिय बने और प्रजा के साथ सहृदयता का संबंध स्थापित करे। अथर्ववेद में कहा गया है कि राजा प्रजा की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए तत्पर रहे और ममत्व का भाव रखें, जिससे प्रजा उसे अपना प्राण समझे और उसके लिए समर्पित हो।

जब राजा प्रजा का कल्याण करता है, तो प्रजा उसकी ओर आकर्षित होती है और राष्ट्र की उन्नति होती है। यजुर्वेद में कहा गया है कि सारी प्रजा राजा की इच्छा के अनुसार चलती है और उसके द्वारा स्थापित नीति और नियमों का पालन करती है। राजा को क्रूर, कपटी और स्वार्थी नहीं होना चाहिए; उसे सर्प की तरह हिंसक या अजगर की तरह संपदा में लिप्त नहीं होना चाहिए। सत्य का पालन करते हुए, प्रजा के हित और धन-धान्य की वृद्धि करना राजा का परम कर्तव्य है।

निष्कर्षत: वेदों के अनुसार राजा का कर्तव्य प्रजा की रक्षा, शत्रुनाशन, धर्मपालन, आर्थिक और

सामाजिक विकास, शिक्षा का प्रसार और प्रजा के कल्याण में समर्पित रहना है। प्रजा का कर्तव्य है राजा का सम्मान करना, आदेशों का पालन करना, सहयोग देना और अनुशासन बनाए रखना। राजा और प्रजा का संबंध अंग-अंगी की तरह अभिन्न है, जिसमें पारस्परिक सहयोग, आदर और समर्पण से राष्ट्र की सुरक्षा, स्थिरता और समृद्धि सुनिश्चित होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद, बनारस: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रकाशन वर्ष 1975*
2. *यजुर्वेद, बनारस: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1980*
3. *अथर्ववेद, वाराणसी: भारतीय संस्कृति शोध संस्थान, 1972*
4. *ऐतरेय ब्राह्मण, बनारस: संस्कृत ग्रंथावली प्रकाशन, 1980*
5. *महाभारत, शांतिपर्व, भारत: पब्लिकेशन बोर्ड, 2005*
6. *पी. वी. काणे, पुणे: भारतीय इतिहास परिषद, 1968*
7. *के. पी. जायसवाल, दिल्ली: लॉरेंस एंड बूल, 1924*
8. *डॉ. अनुराग सिंह, जयपुर: राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2002*
9. *डॉ. शिवप्रसाद शर्मा, बनारस: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1998*